



Kavya Setu

A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal

Impact Factor: 7.2

ISSN No: 3049-4176

जल प्रबंधन और कृषि विकास: प्राचीन भारत की सिंचाई प्रणालियों का ऐतिहासिक विश्लेषण (ऋग्वैदिक काल से गुप्त काल)

करीना

शोधार्थी, इतिहास विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक

डॉ. राज सिंह नांदल

प्रोफेसर, इतिहास विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक

सार

प्राचीन भारत में जल प्रबंधन और कृषि विकास के बीच गहरा और परस्पर निर्भर संबंध रहा है। प्रस्तुत शोध-पत्र में ऋग्वैदिक काल से गुप्त काल तक सिंचाई प्रणालियों के ऐतिहासिक विकास का विश्लेषण किया गया है। इस अध्ययन का उद्देश्य यह समझना है कि किस प्रकार जल संसाधनों के प्रबंधन ने कृषि उत्पादन, सामाजिक संरचना और आर्थिक विकास को प्रभावित किया। ऋग्वैदिक काल में कृषि मुख्यतः वर्षा और प्राकृतिक जल स्रोतों पर निर्भर थी, जहाँ जल को धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया। उत्तर वैदिक काल में स्थायी कृषि के विकास के साथ सिंचाई के कृत्रिम साधनों—जैसे कुएँ, नहरें और जलाशय—का उपयोग प्रारंभ हुआ। महाजनपद और मौर्य काल में जल प्रबंधन अधिक संगठित और राज्य-नियंत्रित प्रणाली के रूप में विकसित हुआ, जिसमें नहरों, बांधों और झीलों का निर्माण कर कृषि को सुदृढ़ बनाया गया। गुप्त काल में सिंचाई प्रणालियाँ अपने परिपक्व रूप में दिखाई देती हैं, जहाँ सामुदायिक भागीदारी, जल संरक्षण और बहु-स्रोत जल उपयोग की प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से विकसित हुई। इस काल में तालाबों और जलाशयों के माध्यम से वर्षा जल संचयन तथा भूजल संरक्षण पर विशेष ध्यान दिया गया। यह अध्ययन यह भी दर्शाता है कि प्राचीन भारत की जल प्रबंधन प्रणाली केवल तकनीकी नहीं थी, बल्कि यह सामाजिक संगठन, आर्थिक संरचना और पर्यावरणीय संतुलन से भी जुड़ी हुई थी। अंततः यह शोध यह निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि प्राचीन भारतीय सिंचाई प्रणालियाँ कृषि विकास की आधारशिला थीं और आज के जल संकट के संदर्भ में उनसे महत्वपूर्ण प्रेरणा प्राप्त की जा सकती है।



Kavya Setu

A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal

Impact Factor: 7.2

ISSN No: 3049-4176

मुख्य शब्द : जल प्रबंधन, कृषि विकास, सिंचाई प्रणाली, ऋग्वैदिक काल, गुप्त काल, जलाशय, नहरें, कुएँ।

प्रस्तावना

प्राचीन भारत की अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार कृषि थी, और कृषि की सफलता जल संसाधनों की उपलब्धता तथा उनके प्रभावी प्रबंधन पर निर्भर करती थी। भारतीय उपमहाद्वीप की मानसूनी जलवायु के कारण वर्षा अनियमित और असमान होती थी, जिसके चलते सिंचाई प्रणालियों का विकास अत्यंत आवश्यक हो गया। इसी आवश्यकता के परिणामस्वरूप प्राचीन भारतीय समाज ने जल के संरक्षण, संचयन और वितरण के विविध उपाय विकसित किए। ऋग्वैदिक काल में कृषि मुख्यतः वर्षा और नदियों पर निर्भर थी, जहाँ जल को धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया। उत्तर वैदिक काल में स्थायी कृषि के विकास के साथ कुओं, नहरों और जलाशयों जैसे कृत्रिम सिंचाई साधनों का उपयोग प्रारंभ हुआ। महाजनपद और मौर्य काल में जल प्रबंधन को राज्य की नीतियों का महत्वपूर्ण हिस्सा बना दिया गया, जिससे कृषि उत्पादन में वृद्धि और आर्थिक विकास को बल मिला। गुप्त काल में जल प्रबंधन अधिक संगठित और परिपक्व रूप में विकसित हुआ, जिसमें सामुदायिक भागीदारी और जल संरक्षण की उन्नत प्रणालियाँ देखने को मिलती हैं। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य इन सभी कालखंडों में सिंचाई प्रणालियों के विकास का विश्लेषण करना है, जिससे यह समझा जा सके कि जल प्रबंधन ने कृषि और सामाजिक-आर्थिक संरचना को किस प्रकार प्रभावित किया।

ऋग्वैदिक काल

ऋग्वैदिक काल (1500-1000 ईसा पूर्व) भारतीय इतिहास का प्रारंभिक वैदिक चरण माना जाता है, जिसमें समाज का आर्थिक और सामाजिक ढाँचा मुख्यतः पशुपालन पर आधारित था, किंतु कृषि का भी क्रमिक विकास प्रारंभ हो चुका था। इस काल में जल प्रबंधन की अवधारणा अपने प्रारंभिक रूप में विद्यमान थी, जो मुख्यतः प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग और सीमित कृत्रिम उपायों पर आधारित थी। ऋग्वेद में “आपः” (जल) को देवतुल्य स्थान दिया गया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि जल केवल भौतिक संसाधन नहीं था, बल्कि धार्मिक, सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण था। नदियाँ—विशेषकर सरस्वती, सिंधु, यमुना और गंगा—इस



Kavya Setu

A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal

Impact Factor: 7.2

ISSN No: 3049-4176

काल की प्रमुख जल स्रोत थीं। इन नदियों के किनारे बसे समुदाय कृषि के लिए जल का उपयोग करते थे और इन्हीं के आधार पर प्रारंभिक कृषि का विकास हुआ।¹

कृषि की दृष्टि से ऋग्वैदिक काल संक्रमणकालीन था, जिसमें पशुपालन के साथ-साथ खेती भी की जाती थी। “हल” के उपयोग के संकेत मिलते हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि भूमि को जोतने की तकनीक विकसित हो रही थी। कृषि उत्पादन मुख्यतः वर्षा पर निर्भर था, जिसे “देवमातृक कृषि” कहा जाता था। वर्षा को इंद्र देवता से जोड़ा गया, जो वर्षा के देवता माने जाते थे। इस प्रकार जल और कृषि के बीच धार्मिक संबंध भी स्थापित था। जल प्रबंधन के साधनों में प्राकृतिक स्रोतों का प्रमुख स्थान था। वर्षा जल का उपयोग सीधे खेतों में किया जाता था। इसके अतिरिक्त नदियों से जल प्राप्त कर कृषि कार्यों में प्रयोग किया जाता था। कुओं का उल्लेख भी ऋग्वेद में मिलता है, जो इस बात का प्रमाण है कि भूजल के उपयोग का प्रारंभिक ज्ञान इस काल में था। कुओं से जल निकालने के लिए रस्सी और पात्र का उपयोग किया जाता था, जिसे बाद में नालियों द्वारा खेतों तक पहुँचाया जाता था।

हालाँकि इस काल में विकसित नहर प्रणाली का स्पष्ट प्रमाण सीमित है, फिर भी जल को खेतों तक पहुँचाने के लिए छोटे स्तर पर जल प्रवाह को नियंत्रित करने के प्रयास अवश्य किए जाते थे। यह प्रारंभिक जल प्रबंधन तकनीकों का संकेत है, जो आगे चलकर अधिक विकसित रूप में दिखाई देती हैं। ऋग्वैदिक कृषि प्रणाली मुख्यतः मानसून पर निर्भर थी, जिससे उत्पादन में अनिश्चितता बनी रहती थी। इस अनिश्चितता को कम करने के लिए समाज ने जल के संरक्षण और उपयोग के विभिन्न उपाय अपनाए। जल स्रोतों के निकट बसावट, उपजाऊ भूमि का चयन और जल उपलब्धता के अनुसार फसलों का निर्धारण—ये सभी जल प्रबंधन के प्रारंभिक रूप थे।

¹ गोपाल, लल्लनजी, प्राचीन भारत में कृषि के इतिहास के पहलू, भारती प्रकाशन, वाराणसी, 1980, पृ. 85-140।



Kavya Setu

A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal

Impact Factor: 7.2

ISSN No: 3049-4176

उत्तर वैदिक काल

उत्तर वैदिक काल (1000–600 ईसा पूर्व) भारतीय इतिहास का वह चरण है जिसमें कृषि प्रणाली अधिक विकसित, स्थायी और संगठित रूप में उभरकर सामने आई। इस काल में आर्य समाज का विस्तार गंगा-यमुना के उपजाऊ मैदानों तक हो चुका था, जिससे कृषि के लिए अधिक उपयुक्त भूमि उपलब्ध हुई। परिणामस्वरूप, जल प्रबंधन और सिंचाई की तकनीकों में भी महत्वपूर्ण विकास देखने को मिलता है। ऋग्वैदिक काल की तुलना में उत्तर वैदिक काल में कृषि जीवन का केंद्र बन चुकी थी। स्थायी कृषि के विकास के साथ ही जल की आवश्यकता अधिक बढ़ गई, क्योंकि अब केवल वर्षा पर निर्भर रहना पर्याप्त नहीं था। इस आवश्यकता ने सिंचाई के कृत्रिम साधनों के विकास को प्रेरित किया। इस काल में नदियों के अतिरिक्त अन्य जल स्रोतों का भी अधिक व्यवस्थित उपयोग होने लगा। कुओं का निर्माण अधिक व्यापक रूप से किया गया, जिससे भूजल का उपयोग बढ़ा। कुओं से जल निकालने के लिए विभिन्न उपकरणों का प्रयोग किया जाता था, जैसे डोल, रस्सी तथा सरल यांत्रिक साधन। इससे सिंचाई की प्रक्रिया अधिक नियमित और नियंत्रित हो सकी।

उत्तर वैदिक साहित्य, विशेषकर अथर्ववेद, में नहरों और जल-प्रवाह के नियंत्रण का उल्लेख मिलता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि इस काल में जल को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने की तकनीक विकसित हो चुकी थी। नहरों के माध्यम से नदियों के जल को खेतों तक लाया जाता था, जिससे कृषि उत्पादन में स्थिरता आई। इसके अतिरिक्त, छोटे जलाशयों और तालाबों का निर्माण भी इस काल की एक महत्वपूर्ण विशेषता थी। वर्षा जल को संग्रहित करने के लिए इन जलाशयों का उपयोग किया जाता था, जिससे सूखे की स्थिति में भी सिंचाई संभव हो सके। यह जल संरक्षण की एक प्रभावी पद्धति थी, जिसने कृषि को प्राकृतिक अनिश्चितताओं से कुछ हद तक सुरक्षित किया।²

² श्रीवास्तव, वी. सी, भारत में कृषि का इतिहास, कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली, 2008, पृ. 120–200।



Kavya Setu

A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal

Impact Factor: 7.2

ISSN No: 3049-4176

उत्तर वैदिक काल में भूमि का वर्गीकरण भी अधिक स्पष्ट रूप से विकसित हुआ। भूमि को उसकी उपजाऊ क्षमता और जल उपलब्धता के आधार पर विभाजित किया गया, जिससे कृषि की योजना अधिक वैज्ञानिक ढंग से बनाई जा सके। “देवमातृक” (वर्षा पर निर्भर) और “अपदेवमातृक” (कृत्रिम सिंचाई पर निर्भर) भूमि की अवधारणा इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम थी। तकनीकी दृष्टि से इस काल में हल (plough) का अधिक उन्नत रूप में उपयोग होने लगा, जिसमें बैलों की सहायता से गहरी जुताई संभव हुई। इससे भूमि की उत्पादकता बढ़ी, लेकिन साथ ही अधिक जल की आवश्यकता भी उत्पन्न हुई। इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए सिंचाई प्रणालियों का विस्तार किया गया।

महाजनपद और मौर्य काल

महाजनपद काल (600–300 ईसा पूर्व) और मौर्य काल (322–185 ईसा पूर्व) प्राचीन भारतीय इतिहास के ऐसे महत्वपूर्ण चरण हैं, जिनमें कृषि, नगरीकरण तथा राज्य व्यवस्था का व्यापक विकास हुआ। इस काल में जल प्रबंधन केवल स्थानीय या सामुदायिक स्तर तक सीमित नहीं रहा, बल्कि यह राज्य की नीतियों और प्रशासनिक ढाँचे का एक अभिन्न अंग बन गया। सिंचाई प्रणालियों का विकास अधिक संगठित, तकनीकी रूप से उन्नत और व्यापक स्तर पर हुआ, जिससे कृषि उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि संभव हुई। महाजनपद काल में कृषि का विस्तार गंगा घाटी के विशाल मैदानों में हुआ, जहाँ उपजाऊ भूमि और जल संसाधनों की उपलब्धता ने कृषि को प्रोत्साहित किया। इस काल में बढ़ती जनसंख्या और नगरीकरण के कारण खाद्यान्न की माँग बढ़ी, जिससे सिंचाई की आवश्यकता भी अधिक महसूस की गई। नदियों के अतिरिक्त कुओं, तालाबों और छोटे जलाशयों का उपयोग बढ़ा, और जल को नियंत्रित करने के लिए प्रारंभिक तकनीकों का प्रयोग किया गया। इस काल में जल प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण पहलू यह था कि विभिन्न महाजनपदों ने अपने-अपने क्षेत्रों में जल संसाधनों के विकास के लिए प्रयास किए। स्थानीय शासकों द्वारा नहरों, बांधों और जलाशयों का निर्माण कराया जाता था, जिससे कृषि उत्पादन को बढ़ाया जा सके। यह स्पष्ट करता है कि जल प्रबंधन को आर्थिक समृद्धि और राज्य की स्थिरता के लिए आवश्यक माना जाने लगा था।

मौर्य काल में जल प्रबंधन अपने अधिक संगठित और उन्नत स्वरूप में दिखाई देता है। यह वह समय था जब पहली बार पूरे भारतीय उपमहाद्वीप के बड़े भाग पर एक केंद्रीकृत शासन



Kavya Setu

A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal

Impact Factor: 7.2

ISSN No: 3049-4176

स्थापित हुआ, और प्रशासनिक व्यवस्था को व्यवस्थित रूप से विकसित किया गया। इस संदर्भ में जल संसाधनों का प्रबंधन भी राज्य की प्रमुख जिम्मेदारी बन गया। कौटिल्य द्वारा रचित अर्थशास्त्र में जल प्रबंधन, सिंचाई और कृषि से संबंधित विस्तृत निर्देश मिलते हैं। इसमें नहरों, बांधों, झीलों और कुओं के निर्माण तथा रख-रखाव के नियमों का उल्लेख है। राज्य द्वारा सिंचाई परियोजनाओं का निर्माण कराया जाता था और किसानों से इसके उपयोग के लिए कर भी लिया जाता था। इससे यह स्पष्ट होता है कि जल प्रबंधन को एक संगठित आर्थिक प्रणाली के रूप में विकसित किया गया था। मौर्य काल की सबसे प्रसिद्ध सिंचाई परियोजनाओं में “सुदर्शन झील” का निर्माण उल्लेखनीय है, जिसे गुजरात के गिरनार क्षेत्र में बनाया गया था। यह झील न केवल जल संचयन का एक उत्कृष्ट उदाहरण थी, बल्कि इससे आसपास के क्षेत्रों में कृषि को भी व्यापक रूप से लाभ मिला। इस प्रकार के जलाशय वर्षा जल को संग्रहित कर सूखे के समय उपयोग में लाए जाते थे। इस काल में नहर प्रणाली का भी विकास हुआ, जिसके माध्यम से नदियों के जल को दूर-दराज के खेतों तक पहुँचाया जाता था। नहरों के निर्माण में ढाल और गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत का उपयोग किया जाता था, जिससे जल का प्रवाह स्वाभाविक रूप से नियंत्रित हो सके। इसके अतिरिक्त, बांधों के माध्यम से जल को रोककर नियंत्रित रूप से उपयोग में लाया जाता था।³

गुप्त काल

गुप्त काल (300–600 ईस्वी) प्राचीन भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण चरण है, जिसे सामान्यतः “स्वर्ण युग” कहा जाता है। इस काल में न केवल राजनीतिक स्थिरता और सांस्कृतिक उत्कर्ष देखने को मिलता है, बल्कि कृषि और जल प्रबंधन के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई। कृषि इस समय की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार थी, और जल संसाधनों के कुशल प्रबंधन ने इसे सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। गुप्त काल में कृषि का विस्तार और तीव्र विकास हुआ, जिसके लिए सिंचाई प्रणालियों का व्यापक उपयोग किया गया। मानसूनी वर्षा पर निर्भरता अभी भी बनी हुई थी, किंतु इसके साथ-साथ कृत्रिम सिंचाई साधनों का उपयोग अधिक संगठित और प्रभावी रूप में होने लगा। इस काल में कुएँ, तालाब, नहरें और जलाशय जैसे विविध जल

³ कौटिल्य, अर्थशास्त्र, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 2010 (पुनर्मुद्रित), पृ. 120–160।



Kavya Setu

A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal

Impact Factor: 7.2

ISSN No: 3049-4176

स्रोतों का समन्वित उपयोग किया जाता था, जिससे कृषि उत्पादन को स्थिर और निरंतर बनाए रखा जा सके।⁴

इस काल की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि जल प्रबंधन में स्थानीय और सामुदायिक भागीदारी का विशेष महत्व था। गाँवों में तालाबों और कुओं का निर्माण तथा उनका रख-रखाव स्थानीय समुदाय द्वारा किया जाता था। यह व्यवस्था न केवल जल संसाधनों के संरक्षण को सुनिश्चित करती थी, बल्कि जल के समान वितरण में भी सहायक थी। ग्राम स्तर पर जल प्रबंधन की यह प्रणाली सामाजिक सहयोग और आत्मनिर्भरता का प्रतीक थी। गुप्त काल में तालाब और जलाशयों का विशेष महत्व था। वर्षा जल को संग्रहित करने के लिए इनका निर्माण बड़े पैमाने पर किया जाता था। इन जलाशयों के माध्यम से न केवल सिंचाई की जाती थी, बल्कि भूजल स्तर को भी बनाए रखा जाता था। कई अभिलेखों में यह उल्लेख मिलता है कि धनी व्यक्तियों, सामंतों और शासकों द्वारा सार्वजनिक हित के लिए तालाबों और कुओं का निर्माण कराया जाता था। इससे यह स्पष्ट होता है कि जल प्रबंधन को धार्मिक और सामाजिक पुण्य कार्य के रूप में भी देखा जाता था। नहर प्रणाली भी इस काल में प्रचलित थी, यद्यपि यह मौर्य काल की तुलना में अधिक स्थानीय स्तर पर संचालित होती थी। नदियों से जल को मोड़कर खेतों तक पहुँचाया जाता था, जिससे सूखे क्षेत्रों में भी कृषि संभव हो सके। गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत पर आधारित यह प्रणाली सरल, प्रभावी और कम लागत वाली थी। कुओं का उपयोग भी व्यापक रूप से होता था, विशेषकर उन क्षेत्रों में जहाँ नदियों या बड़े जलाशयों की उपलब्धता कम थी। कुओं से जल निकालने के लिए सरल यांत्रिक उपकरणों का उपयोग किया जाता था, जिससे सिंचाई की प्रक्रिया अधिक सुगम और नियमित हो सकी। तकनीकी दृष्टि से गुप्त काल में जल प्रबंधन अपेक्षाकृत परिपक्व अवस्था में था। वर्षा जल संचयन, बहु-स्रोत जल उपयोग और जल वितरण की संतुलित प्रणाली इस काल की प्रमुख विशेषताएँ थीं।

⁴ शर्मा, आर. एस, प्राचीन भारत में भौतिक संस्कृति और सामाजिक संरचनाएँ, मैकमिलन इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली, 1983, पृ. 140-180।



Kavya Setu

A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal

Impact Factor: 7.2

ISSN No: 3049-4176

सिंचाई प्रणालियों के प्रकार:-

प्राचीन भारत में कृषि के विकास के साथ-साथ विभिन्न प्रकार की सिंचाई प्रणालियों का विकास हुआ, जो भौगोलिक परिस्थितियों, जल स्रोतों की उपलब्धता तथा तकनीकी ज्ञान के अनुसार भिन्न-भिन्न थीं। इन प्रणालियों का उद्देश्य जल का संग्रह, संरक्षण और खेतों तक उसका उचित वितरण सुनिश्चित करना था। प्राचीन भारतीय समाज ने प्राकृतिक और कृत्रिम दोनों प्रकार की सिंचाई विधियों का संतुलित उपयोग किया।⁵

1. कुआँ, तालाब और जलाशय आधारित सिंचाई

कुएँ प्राचीन भारत में सिंचाई के सबसे सामान्य और प्राचीन साधनों में से एक थे। इन्हें “कूप” कहा जाता था और इनका उपयोग विशेष रूप से उन क्षेत्रों में किया जाता था जहाँ नदियों या बड़े जल स्रोतों की कमी होती थी। कुआँ से जल निकालने के लिए रस्सी, डोल और बाद में सरल यांत्रिक उपकरणों का उपयोग किया जाता था। इस प्रणाली का सबसे बड़ा लाभ यह था कि यह वर्षा पर निर्भर नहीं थी और पूरे वर्ष सिंचाई की सुविधा प्रदान करती थी। तालाब और जलाशय वर्षा जल संचयन की एक महत्वपूर्ण प्रणाली थे। वर्षा के जल को इन संरचनाओं में एकत्रित कर बाद में सिंचाई के लिए उपयोग किया जाता था। यह प्रणाली विशेष रूप से उन क्षेत्रों में उपयोगी थी जहाँ वर्षा सीमित या अनियमित होती थी। गुप्त काल में इस प्रकार की सिंचाई प्रणाली का व्यापक विकास हुआ और इसे सामुदायिक स्तर पर संचालित किया जाता था।

2. नहर और वर्षा आधारित सिंचाई

नहरें नदियों से जल को खेतों तक पहुँचाने का एक महत्वपूर्ण माध्यम थीं। इस प्रणाली में नदी के जल को मोड़कर कृत्रिम जल मार्ग के माध्यम से दूर-दराज के क्षेत्रों तक पहुँचाया जाता था। नहर सिंचाई विशेष रूप से समतल भूमि वाले क्षेत्रों में अधिक प्रभावी थी। मौर्य काल में इस प्रणाली का अधिक संगठित विकास हुआ, जहाँ राज्य द्वारा नहरों का निर्माण और रख-रखाव

⁵ भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR), प्राचीन भारत में कृषि, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली, 1964, पृ. 13-60।



Kavya Setu

A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal

Impact Factor: 7.2

ISSN No: 3049-4176

किया जाता था। यह सबसे प्राचीन और प्राकृतिक सिंचाई प्रणाली थी, जिसमें कृषि पूरी तरह से वर्षा पर निर्भर रहती थी। इसे “देवमातृक कृषि” भी कहा जाता था। इस प्रणाली में सिंचाई के लिए किसी कृत्रिम साधन की आवश्यकता नहीं होती थी, लेकिन इसकी सबसे बड़ी कमजोरी यह थी कि यह वर्षा की अनिश्चितता पर निर्भर थी।

4. नदी और बांध आधारित सिंचाई

बांधों का निर्माण नदियों या जलधाराओं पर किया जाता था, जिससे जल को रोककर एकत्रित किया जा सके। इस जल का उपयोग बाद में नियंत्रित रूप से सिंचाई के लिए किया जाता था। बांध न केवल जल संचयन का साधन थे, बल्कि वे जल प्रवाह को नियंत्रित करने और बाढ़ से बचाव में भी सहायक थे। मौर्य काल में इस प्रकार की संरचनाओं का उल्लेख मिलता है, जैसे सुदर्शन झील। नदियाँ प्राचीन भारत की सबसे महत्वपूर्ण प्राकृतिक जल स्रोत थीं। नदी के किनारे बसे क्षेत्रों में सीधे नदी के जल का उपयोग सिंचाई के लिए किया जाता था। कभी-कभी छोटे-छोटे नालों के माध्यम से नदी का जल खेतों तक पहुँचाया जाता था। यह प्रणाली सरल थी, लेकिन नदी के जल स्तर पर निर्भर रहती थी।

निष्कर्ष

प्राचीन भारत में जल प्रबंधन और कृषि विकास का संबंध अत्यंत गहरा और परस्पर निर्भर था। ऋग्वैदिक काल में जहाँ कृषि मुख्यतः वर्षा और प्राकृतिक जल स्रोतों पर आधारित थी, वहीं उत्तर वैदिक काल में सिंचाई के कृत्रिम साधनों—जैसे कुएँ, नहरें और जलाशय—का विकास प्रारंभ हुआ। इससे कृषि उत्पादन में स्थिरता और विस्तार संभव हुआ। महाजनपद और विशेष रूप से मौर्य काल में जल प्रबंधन को संगठित रूप दिया गया और इसे राज्य की नीतियों का महत्वपूर्ण अंग बनाया गया। नहरों, बांधों और जलाशयों के निर्माण से कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई और आर्थिक समृद्धि को बल मिला। गुप्त काल में यह व्यवस्था और अधिक परिपक्व हो गई, जहाँ सामुदायिक भागीदारी और जल संरक्षण की उन्नत प्रणालियाँ विकसित हुईं। इस प्रकार, प्राचीन भारत की सिंचाई प्रणालियाँ तकनीकी, सामाजिक और पर्यावरणीय दृष्टि से संतुलित थीं। इन प्रणालियों ने न केवल कृषि को सुदृढ़ बनाया, बल्कि सामाजिक-आर्थिक विकास को भी गति दी। वर्तमान जल संकट के संदर्भ में प्राचीन भारतीय जल प्रबंधन से महत्वपूर्ण सीख ली जा सकती है, विशेषकर जल संरक्षण और सामुदायिक सहभागिता के क्षेत्र में।



Kavya Setu

A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal

Impact Factor: 7.2

ISSN No: 3049-4176

संदर्भ सूची

1. शर्मा, राम शरण, प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास, ओरिएंट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली, 2001, पृ. 75-120।
2. अग्रवाल, वासुदेव शरण, प्राचीन भारतीय लोक जीवन, चौखंबा विद्याभवन, वाराणसी, 1966, पृ. 210-250।
3. थापर, रोमिला, प्राचीन भारत, पैंगुइन बुक्स इंडिया, नई दिल्ली, 2002, पृ. 90-140।
4. गोपाल, लल्लनजी, प्राचीन भारत में कृषि के इतिहास के पहलू, भारती प्रकाशन, वाराणसी, 1980, पृ. 85-140।
5. श्रीवास्तव, वी. सी, भारत में कृषि का इतिहास, कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली, 2008, पृ. 120-200।
6. कौटिल्य, अर्थशास्त्र, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 2010 (पुनर्मुद्रित), पृ. 120-160।
7. शर्मा, आर. एस, प्राचीन भारत में भौतिक संस्कृति और सामाजिक संरचनाएँ, मैकमिलन इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली, 1983, पृ. 140-180।
8. भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR), प्राचीन भारत में कृषि, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली, 1964, पृ. 13-60।
9. कोसांबी, डी. डी, भारतीय इतिहास के अध्ययन का परिचय, पॉपुलर प्रकाशन, मुंबई, 1956, पृ. 90-130।